गणित का सीखना और सिखाना

❑ रोहित धनकर

प्रस्तुत लेख में प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर गणित के शिक्षार्थियों में व्याप्त हताशा के कारकों के रूप में गणित विषय की प्रकृति और शिक्षार्थियों को आने वाली कठिनाइयों की पड़ताल की गई है। रिचर्ड स्केम के इस कथन को पड़ताल का प्रस्थान-बिन्दु माना गया है, 'जब तक हम स्वयं 'समझ' के बारे में बेहतर व साफ समझ न बना लें; हमारी स्थिति गणित को खुद समझने में और दूसरों को समझाने में कमजोर ही रहेगी ।' अत: लेख में समझ तथा इसके स्वरुप, गणित की विशिष्ट प्रवृत्तियों, अवधारणात्मक संरचना व संकेतों और इसके शिक्षाक्रम व शिक्षण विधियों पर विचार किया गया है। अंतत: कहा गया है कि गणित-शिक्षण भी शिक्षा-दर्शन की समग्रता से ही निर्देशित हो सकता है।

परिचय

इस लेख में मैं यह मानकर चलूंगा कि किसी भी विषय के शिक्षा-क्रम की मुख्य चिन्ता यह होती है कि उस विषय विशेष की समझ के विकास के अनुकूल शिक्षण का एक रास्ता तैयार किया जा सके । इस प्रकार के रास्ते को पाने के लिए हमें अनेक पहलुओं पर विचार करना होगा । शिक्षार्थियों को सीखने में आने वाली कठिनाई इन पहलुओं में से एक प्रमुख पहलू है । चूंकि किसी भी वर्तमान पाठ्य-संरचना की आलोचना के दौरान 'शिक्षार्थियों की कठिनाइयाँ' एक महत्वपूर्ण आलोचना होती है अत: नये शिक्षाक्रम के विकास के वक्त यह पहलु विशेष रूप से महत्व रखता है। शिक्षाक्रम के विकास में एक अन्य प्रमुख पहलू है 'विषय की प्रकृति'। ये दोनों पक्ष तथा इनके अन्तर्सम्बंध इस लेख का केन्द्रीय मुद्दा हैं ।

हम सभी जानते हैं कि प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर गणित के शिक्षार्थियों में बहुत हताशा है । यह हताशा कॉलेजों तथा विश्वविद्यालय के गणित विभागों में कम दिखाई देती है क्योंकि वहां अधिकांश विद्यार्थी सोचते हैं कि वे गणित के जिन्न को संभाल सकते हैं । पर स्कूल में गणित एक अनिवार्य विषय है, स्कूली बच्चों ने विश्वविद्यालय के छात्रों की तरह जानबूझ कर इसे चुना नहीं है और अधिकांश विद्यार्थी इसे नापसंद करते हैं । गणित वह विषय है जो बोर्ड परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों के प्रतिशत को गिरा देता है (कम से कम राजस्थान मा. शि. बोर्ड के मामले में तो ऐसा ही है ।)। अधिकांश प्राइवेट ट्यूटर गणित विषय से ही होते हैं तथा स्कूल में बहे आँसुओं का एक बड़ा हिस्सा गणित के ही खाते में आता है। इससे पहले कि हम पाठ्यक्रम सुधार तथा शिक्षण-विधि विकास के रूप में इन समस्याओं के उपचार गिनाने लगें, संभवत: यह प्रश्न उठाना उचित होगा कि ऐसा क्यों हैं कि गणित की कक्षाओं में अपने हिस्से से बहुत ज्यादा हताशा मिलती है ?

एक आम समस्या का विशिष्ट स्वरूप

मैं यह दावा करना चाहूँगा कि छात्रों में वस्तुत: शिक्षाक्रम के सभी विषयों में समझ का अभाव सामान्य तौर पर होता है । समझ के इस अभाव के कई कारण हो सकते हैं, उदाहरण के लिए शिक्षार्थी के अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर ध्यान न देना और साफ अवधारणायें बनाने पर ध्यान न देना । दरअसल होता यह है कि समझ का यह धुंधलापन एक निर्णायक स्तर पर पहुंचने पर गणित में सीखने की प्रक्रिया को लगभग पूरी तरह रोक देता है, सीखने की राह में असाध्य बाधा बन जाता है। जबकि अन्य विषयों में सीखने का दिखावा बनाए रखा जा सकता है ।

इस बात की सच्चाई जाँचने के लिए हम किसी भी औसत भौतिकी स्नातक से द्रव्यमान तथा भार में अन्तर स्पष्ट करने को कह सकते हैं । या फिर इसी प्रकार हम किसी भूगोल स्नातक से पूछ सकते हैं कि पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूर्णन का अक्ष, उसके सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने के परिपथ-तल के लम्बवत् हो तो दिल्ली का मौसम कैसा होगा ? यदि उत्तर में प्राप्त शब्द जाल से प्रभावित न हों तथा उसमें प्रयुक्त अवधारणाओं की स्पष्टता और अंतर-संबंधों पर जोर दें, तो पायेंगे कि इन विषयों में भी अवधारणाएं अस्पष्ट तथा अन्तर्संबंध कमोबेश अनुपस्थित होते हैं । अत: यही सिद्ध होता है कि ये विषय भी केवल रटे भर जाते हैं, न कि समझे जाते हैं ।

ऐसा लग सकता है कि इन समस्याओं की ओर संकेत कर मुद्दे को हल्का बनाना है। परन्तु वस्तुत: मेरा उद्देश्य इसके एकदम विपरीत है । *मैं तो उस आइसबर्ग की तरफ इशारा कर रहा हूँ, ''गणित सीखने-सिखाने में हताशा'' जिसकी चोटी भर है ।* किन्तु

यह सवाल फिर भी बना ही रहता है कि समझ का यह अभाव भला गणित में ही क्यों इतनी स्पष्टता से दिखाई देता है ? तथा गणित अधिगम में क्यों यह अधिक कठिनाइयां उत्पन्न करता है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें मानवीय-समझ के कुछ प्रासंगिक गुणों तथा गणित की प्रकृति पर ध्यान देना होगा ।

समझ तथा इसके स्वरूप

अभी जो विषय मैं उठाने जा रहा हूं, वह पहली नजर में मूल विषय से भटकता लग सकता है । पर मेरे विचार से यह हमारी समस्या पर विचार करने का सब से सीधा रास्ता है क्योंकि अच्छी तरह से समझी हुई सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में ही विशिष्ट गतिविधियाँ तथा शिक्षण-विधियां कोई अर्थ ग्रहण करती हैं। जब यह पृष्ठभूमि स्पष्ट नहीं होती है तो, इन विशिष्ट विधियों तथा तकनीकों के बेमतलब कवायद बन जाने का खतरा लगातार बना रहता है । जबकि दूसरी ओर यदि किसी शिक्षक का सैद्धांतिक पक्ष स्पष्ट है तथा उसे उद्देश्यों की जानकारी है, तो पूरी संभावना है कि वह स्वयं ही आवश्यक विशिष्ट तकनीकों का विकास कर लेगा। और जब कोई पाठ्यक्रम पर विचार कर रहा हो तब तो इस पक्ष को ध्यान में रखना और भी जरूरी हो गया है । अत: मेरा विश्वास है कि रिचर्डस स्केम्प का यह कथन सत्य ही है कि ''जब तक हम स्वयं 'समझ' के बारे में बेहतर व साफ समझ न बना लें; हमारी स्थिति गणित को खुद समझने में और दूसरों को समझाने में भी कमजोर ही रहेगी ।''

यहां समझ शब्द का अर्थ है अनुभव की व्याख्या करने के, उसे व्यवस्थित करने के एवं उसका विश्लेषण करने के तरीकों की संपूर्ण मानवीय सामग्री । दुनिया को समझने का काम हम अवधारणाओं, अवधारणात्मक संरचनाओं तथा अवधारणाओं को व्यवस्थित करने के सामान्य नियमों (सिद्धांतों) के माध्यम से करते हैं । अवधारणाओं को केवल संकेतों से समझा जा सकता है । ये अवधारणाएं तथा इनको इंगित करने वाले संकेत दोनों को ही, यदि पी. एच. हर्ट्स के शब्दों में कहा जाये तो, लोकाधारित (पब्लिकली रूटेड) होना चाहिए । अनुभव की व्याख्या तथा विश्लेषण को भी उनकी सत्यता, औचित्य तथा पर्याप्तता के लिए जांचना होता है। अत: हम कह सकते हैं कि समझ, अवधारणाओं, अवधारणात्मक संरचना, संगठन-सिद्धांत तथा अनुभवों के अर्थग्रहण, एवं संगठन के विश्लेषण के लिए प्रयुक्त संगठनात्मक सिद्धांतों एवं जांच प्रक्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था है जिसे सार्वजनिक तौर पर अभिव्यक्त किया जा सकता है तथा जांचा जा सकता है । जैसा कि कई विचारक मानते हैं इंसानी समझ के एकाधिक रूप बनते हैं। मान लीजिये कि हम एक वस्तु के अतीत को तथा उसकी भौतिक बुनावट को समझना चाहते हैं। और उसकी आकारिक संरचना को भी समझना चाहते हैं, तो जो तरीके हम काम में लेंगे वे एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न होंगे।

जांच करने पर ज्ञात होता है कि समझने के अलग-अलग तरीके एक दूसरे से भिन्न होते हैं और इनको मोटे तौर पर अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । समझ के तरीकों के ये स्थूल वर्ग 'समझ के स्वरूप' कहे जा सकते हैं । चुने गये आधार के अनुसार ज्ञान के एकाधिक वर्ग हो सकते हैं । इस लेख में प्रयुक्त वर्गीकरण पी. एच. हर्ट्स के वर्गीकरण पर आधारित है । जिसे यहां 'समझ के स्वरूप' कहा गया है, उसे ही प्रो. फेनिक्स ने ''ज्ञान के स्वरूप'' कहा है । समझ के स्वरूपों को अलग-अलग पहचानने के लिए हर्स्ट द्वारा काम में लिये गये आधार निम्न प्रकार है :

1. विशिष्ट स्वरूप की अवधारणाएं
2. अवधारणाओं के बीच के संबंध तथा इन संबंधों से उत्पन्न तार्किक संरचनाएं जो कि स्वरूप में अलग हैं ।
3. समझ के स्वरूपों के भीतर उत्पन्न अभिव्यक्ति के प्रकार।
4. सत्य की कसौटियां तथा जाँच प्रक्रियाएं भी अलग-अलग स्वरूपों के लिए अलग-अलग हैं ।

पहले तीन आधार वस्तुत: एक दूसरे से तार्किक संरचनाओं तथा अभिव्यक्तियों को उस स्वरूप की केन्द्रीय अवधारणाओं की प्रकृति से प्रभावित माने जा सकते हैं। गणित के संबंध में संकेतों की व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण है अत: वर्तमान चर्चा में मैं विश्लेषण को निम्न लिखित शीर्षकों में संगठित करना चाहूंगा :

1. अवधारणाएं
2. अवधारणात्क संरचनाएं एवं संकेत, और
3. सही/गलत के लिए जाँच प्रक्रियाएं ।

मानवीय अनुभवों की व्याख्या एवं उन्हें ज्ञान के रूप में व्यवस्थित करने के अलग पहचाने जा सकने वाले तरीके ही समझ के स्वरूप हैं; उन्हें स्कूली पाठ्यक्रम के विषयों के रूप में समझे जाने के भ्रम से बचना चाहिए । हर्ट्स ने समझ के आठ प्रकारों की एक सूची दी है जिनका पुन: उप विभाजन किया जा सकता है । एक विशेष विषय समझ के एक स्वरूप का उप विभाग हो सकता है (जैसे कि भौतिकी, विज्ञान का एक उप विभाग है तथा विज्ञान समझ का एक मूल स्वरूप है)। दूसरी ओर कोई विषय समझ के अलग-अलग स्वरूपों से ली गई सामग्री का सम्मिश्रण भी हो सकता है - जैसे कि भूगोल में विज्ञान, गणित, इतिहास आदि चयनित सामग्री होती है । इसके अतिरिक्त समझ के मूल स्वरूप

स्वयं में ही एक-दूसरे से जुड़े हुए होते हैं तथा एक दूसरे से अंश प्राप्त करते हैं जैसे कि विज्ञान, गणित से काफी कुछ ग्रहण करता है । हालांकि कोई भी विज्ञान का छात्र यह सही सही बता सकता है कि विज्ञान के कौन-कौन से अंश मूलत: गणित से संबंधित है ?

चूंकि गणित समझ का एक महत्वपूर्ण स्वरूप है तथा यह अपने आप में बाकी से अलग है इसलिए इस अलगाने वाली प्रवृत्ति का उपयोग गणित की प्रकृति को समझने में काफी लाभदायक हो सकता है ।

गणित की विशेषतायें तथा उसके मायने

इस हिस्से में मैं यह जाँचने का प्रयास करूंगा कि गणित समझ के अन्य स्वरूपों से किस प्रकार भिन्न है ? यहां गणित की उन विशेषताओं पर ध्यान देंगे जो इस विषय के सीखने-सिखाने से संबंधित है।

1. अवधारणाएं

सभी अवधारणाएं अमूर्त होती हैं । उनके कोई भौतिक गुण जैसे कि आकार, रूप, रंग, ध्वनि, स्वाद आदि नहीं होते। इस कारण अवधारणाएं बुद्धि की पकड़ में बहुत आसानी से नहीं आतीं और इनका उपयोग करना कठिन लगता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए हम उनके साथ कुछ शब्द तथा संकेत चिन्हों को जोड़ देते हैं । अवधारणाओं से जुड़े शब्द एवं संकेत इनके नाम कहे जा सकते हैं । चिंतन में स्पष्टता रखने के लिए यह जरूरी है कि अवधारणा के 'नाम' और अवधारणा के तत्व में फर्क को भी साफ-साफ समझा जाये। 'बोतल' शब्द उस अवधारणा का एक संकेत है जो हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होती है जब हम यह शब्द सुनते हैं। यह शब्द 'बोतल' स्वयं में अवधारणा नहीं है, किन्तु इससे जो छवि हमारे मस्तिष्क में बनती है वह अवधारणा है । इसी प्रकार कोई विशेष बोतल जो हमारे आसपास हो सकती है वह भी स्वयं में अवधारणा नहीं है । यह मात्र एक उदाहरण है। यह उदाहरण उस एक सामान्य विचार को प्रतिबिम्बित करता है जो उन सभी बोतलों पर लागू होता है जिन्हें हमने अब तक देखा है या भविष्य में देखेंगे। यही 'सामान्य विचार', जिसका कि हमारे सामने रखी एक बोतल उदाहरण भर है, अवधारणा है । किसी अवधारणा के दृश्यात्मक संकेत का आशय उन चिन्हों से है जो हम कागज पर बनाते हैं ताकि पाठक के मस्तिष्क में वह अवधारणा उत्पन्न हो सके।

प्राथमिक तौर पर हमारी अवधारणाएं बाहरी जगत के हमारे एंद्रिय अनुभवों पर आधारित होती हैं । जैसा कि डियर्डन बताते हैं कि किसी व्यक्ति के पास 'अवधारणा होने का अर्थ' है उसके पास ''सामान्यीकरण के ऐसे सिद्धांत का होना, जिससे बहुत सी वस्तुओं को समान अथवा एक ही प्रकार का समझा जा सके'' ।

पहले हम इन सामान्यीकरण के सिद्धांतों को मूर्त वस्तुओं तथा उनके अनुभवों में पाते हैं तथा इस प्रकार बोतल, गिलास, पतीला, बाल्टी, मीठा, खट्टा, आदि अवधारणाओं का निर्माण होता है । इन्हें 'प्राथमिक अवधारणाएं' कहा जा सकता है। किन्तु यह प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं होती। हम बोतल, गिलास, पतीला, बाल्टी आदि अवधारणाओं में भी सामान्यीकरण सिद्धान्त लागू होता देख सकते हैं, जब हम इन्हें मिलाकर एक और अधिक सामान्य अवधारणा बनाते हैं । वह है 'बर्तनों' की अवधारणा। इसी प्रकार खट्टा, मीठा, कड़वा आदि के आधार पर हम 'स्वाद' की अवधारणा तक पहुंचते हैं। सामान्यीकरण का वह सिद्धांत जिसके अनुसार बोतल, गिलास आदि को एक ही वर्ग का माना जा सकता है, केवल तभी पकड़ में आता है जबकि किसी के पास पहले से ही इन अलग-अलग अवधारणाओं अर्थात बोतल, गिलास आदि का ज्ञान हो । अर्थात यह अवधारणा अन्य अवधारणाओं से निर्मित होती है, तथा इसे हम ''आश्रित अवधारणा'' कह सकते हैं।

''आश्रित अवधारणाएं'' ऐन्द्रिय अनुभवों से और दूर होती हैं। अत: ये प्राथमिक अवधारणाओं से अधिक अमूर्त होती हैं। इसी तरह आगे बढ़ने पर हम पाते हैं कि अवधारणाएं बहुत अधिक अमूर्त हो सकती हैं तथा अनुभवों से बहुत दूर भी निकल सकती हैं । इस लेख में पहले कहा गया है कि समझ के अलग-अलग स्वरूपों (दायरों) से संबंधित अवधारणाएं अपनी-अपनी विशेषताएं लिए होती हैं। अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि गणितीय अवधारणाओं की विशिष्टताएं क्या हैं ?

एन. सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित न्यूनतम अधिगम स्तर पर बनी समिति के प्रतिवेदन में ''प्राथमिक गणित की तैयारी'' शीर्षक के अन्तर्गत कुछ अवधारणाओं का उल्लेख कक्षा 1 के लिए अवधारणाओं तथा दक्षताओं को सूचीबद्ध करने से ठीक पूर्व किया गया है । इसका अर्थ यह हुआ कि यह दस्तावेज इन अवधारणाओं को गणित की सबसे कम-अमूर्त अवधारणाएं मानता है। ये अवधारणाएं हैं - आकार, लंबाई, मोटाई, वजन, आयतन, आकृति, रंग, स्थिति, मात्रा तथा संबंध । 'छोटा है', 'बड़ा है', 'बराबर है', 'भारी है', 'सबसे भारी है', 'निकट', 'दूर' तथा 'निकटतम' है ।

ये सभी प्रतिदिन काम आने वाली आम अवधारणाएं हैं । वस्तुत: इनमें से कोई भी विशेष रूप से गणित मात्र से संबद्ध नहीं है । रिपोर्ट के अनुसार गणितीय अवधारणाओं को सीखने के लिए इन अवधारणाओं का ज्ञान पूर्व-योग्यता है, जो कि सही है। जबकि हम देखते हैं कि ये सभी वस्तुत: आश्रित अवधारणाएं हैं । यहां हमारा उद्देश्य इस रिपोर्ट की आलोचना करना नहीं है । दरअसल

वे ठीक हैं, जैसा कि मैंने पहले भी इन अवधारणाओं को शुरू में सूचीबद्ध करते हुए कहा था। जो तथ्य मैं स्थापित करना चाहता हूँ, वह यह है कि गणितीय अवधारणाओं को सीखना शुरू करने से पहले ही हम उस स्थिति में पहुंच चुके होते हैं, जहां के सीधे अनुभव उन अवधारणाओं तक के लिए पर्याप्त नहीं होते हैं जो कि गणितीय अवधारणाओं को सीखने की पूर्व-योग्यताएं मात्र हैं । भले ही यह प्रमाण नहीं है तथापि हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि गणित की सभी अवधारणाएँ उच्च-अमूर्तता की अवधारणाएँ हैं ।

दूसरे, गणितीय अवधारणाएं अधिक सुस्पष्ट पदक्रमों का पालन करती हैं । इस पदक्रम की शृंखला से एक भी कड़ी का अनुपस्थित होना इससे ऊपर की सभी अवधारणाओं के निर्माण को निश्चित रूप से बाधित करता है । इसका अर्थ यह है कि गणितीय अवधारणाओं को सीखने के कोई 'शॉर्ट-कट्स' नहीं हो सकते।

प्रत्येक शिक्षाक्रम की कुछ अपनी ज्ञान–मीमांसात्मक पूर्वधारणाएँ होती हैं । सामान्यत: ये पूर्वधारणाएं विस्तार से और अलग से बताई नहीं जाती । इस कारण वे अविश्लेषित रह जाती हैं तथा हम यह भी निश्चित नहीं कर पाते हैं कि यह शिक्षाक्रम अपनी ज्ञान–मीमांसा के अनुरूप है भी अथवा नहीं ।

तीसरी विशेषता यह है कि गणितीय अवधारणाओं के लिए बाहरी जगत में कोई वास्तविक उदाहरण नहीं होता । ये अवधारणाएं किसी भौतिक वस्तु, बल अथवा प्रवृत्ति से संदर्भित नहीं होतीं। उनमें से कुछ का, जैसे कि एक वर्ग का, किसी निश्चित वस्तु अथवा कागज पर खींची गयी किसी आकृति से सीधा संबंध दिखता तो अवश्य है किन्तु ऐसा है नहीं । वस्तुत: रेखा गणित का वर्ग सुस्पष्ट कसौटियों पर खरा उतरने वाला एक आदर्श मात्र है । जबकि कागज पर बनाई गई वर्ग की आकृति रेखागणित के वर्ग का एक चिन्ह अथवा संकेत भर है तथा वास्तविक वर्ग नहीं है । कुल मिलाकर गणितीय अवधारणाएं सटीक रूप में अत्यन्त सूक्ष्मता एवं शुद्धता से परिभाषित होती हैं । गणित और बिना जांचे विश्वास करने वाले लोग, एक दूसरे को पसंद नहीं करते। इसी तरह-अस्पष्ट-विचारक और गणित में दोस्ती भी मुश्किल है। पाठ्यक्रम तथा शिक्षण-विधि दोनों के लिए इस बात के कुछ निहितार्थ हैं ।

(अ. 1) वास्तविक जगत में कहीं भी गणितीय अवधारणाओं से सीधा सामना नहीं होता तथा वे इतनी अमूर्त होती हैं कि ''गणित को दैनिक वातावरण से सीधा नहीं सीखा जा सकता बल्कि इसे व्यक्ति स्वयं की चिंतनशील बौद्धिकता के साथ अन्य गणितज्ञों के माध्यम से ही सीख सकता है ।'' इसका अर्थ यह है कि पाठ्यक्रम में सावधानीपूर्वक व्यवस्थित किए गए वे अनुभव प्रदान किए जाने चाहिए जहाँ से शिक्षक की सहायता से बच्चे, गणितीय सामान्यीकरण कर सकें ।

(अ. 2) छात्रों के पास अमूर्तता के जिस स्तर की अवधारणाओं का ज्ञान है उससे उच्च स्तर की अवधारणाएं उन्हें केवल परिभाषाओं के माध्यम से नहीं सिखाई जा सकती । ये अवधारणाएं उपयुक्त उदाहरणों के आधार पर बच्चे को स्वयं बनानी होगी। इसका अर्थ यह है कि पाठ्य-पुस्तकों में सावधानीपूर्वक चुने गए बहुत-से उदाहरण दिये जाने चाहिए तथा अवधारणाओं के बन चुकने के बाद उन्हें दृढ़ करने के लिए ही परिभाषाओं का उपयोग किया जाना चाहिए ।

(अ. 3) गणित के किसी भी पाठ्यक्रम में अवधारणाओं की तार्किक-वरीयताओं को स्पष्टत: तैयार किया जाना चाहिए । अवधारणाओं को सीखने के क्रम का, जो कि सावधानीपूर्वक किए गए अवधारणात्मक विश्लेषण पर आधारित हो, पालन किया जाना चाहिए।

(अ. 4) चूंकि गणितीय अवधारणाएं अत्यंत अमूर्त होती हैं अत: सदैव यह खतरा बना रहता है कि उनको अर्थहीन संकेत भर के रूप में देखा जाने लगे। अत: स्वयं पाठ्यक्रम के आरंभिक स्तरों पर बहुत से प्रासंगिक अनुभव प्रदान किए जाने चाहिए । इसके साथ ही अनुभवों का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वे उपकरणों पर निर्भर न रह जाएं। केवल तभी उनकी प्रकृति सही अर्थों में गणितीय बन सकेगी।

(अ. 5) अवधारणाओं को सिखाने के लिए अलग-अलग तरह के उदाहरणों का इस्तेमाल होना चाहिए ताकि सीखी गई अवधारणा उदाहरण विशेष की प्रवृत्तियों से मुक्त रहे और सामान्यीकरण की अपनी पूरी शक्ति प्राप्त कर सके ।

(अ. 6) आरंभ से ही गणित के पाठ्यक्रम में स्पष्टता एवं शुद्धता को भी एक महत्वपूर्ण मूल्य के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए ।

2. अवधारणात्मक संरचनाएं तथा संकेत

हर अवधारणा बहुत सी अन्य अवधारणाओं से जुड़ी होती हैं। इस तरह के संबंधों का एक समूह तो उस पदक्रम का एक हिस्सा होने में निहित है जिसकी चर्चा हमने पहले की थी। प्रत्येक अवधारणा अलग-अलग स्तरों पर अनेक पदक्रमों का अंग हो सकती है। इन

पद क्रमात्मक संबंधों के अतिरिक्त, अवधारणाओं के बीच और भी कई प्रकार के संबंध होते हैं । उदाहरण के लिए - समतुल्यता, अनुवर्ती अथवा विलोमता का संबंध ।

इस प्रकार के संबंधों के जटिल तंत्र अवधारणाओं को जोड़कर अवधारणात्मक संरचनाओं का निर्माण करते हैं । चूंकि अवधारणाएं समझ का आधार तैयार करती हैं, अत: ये अवधारणात्मक संरचनाएं 'सीखने' का बुनियादी औजार बन जाती हैं। जब हमारा सामना किसी नयी परिस्थिति से होता है तो हम उसे अपने पास विद्यमान अवधारणात्मक संरचनाओं की परिधि में ही समझने का प्रयास करते हैं। यदि यह पहले से मौजूद किसी एक संरचना में फिट हो जाये तथा हम अपनी मौजूदा समझ के जरिए इसकी व्याख्या कर सकें तो यह नया अनुभव हमारी समझ को समृद्ध करता है। यह एक प्रकार का सीखना हुआ।

यदि हमारी यह परिस्थिति हमारी पहले से विद्यमान किसी संरचना में फिट नहीं बैठती तो हम स्वयं को भ्रमित अनुभव करते हैं । उस समय या तो हमें अपनी कुछ अवधारणात्मक संरचनाओं को पुनर्निर्मित तथा पुनर्गठित करने की आवश्यकता होती है या फिर कुछ नई अवधारणात्मक संरचनाओं को बनाने की जरूरत होती है।

यदि हमारे पास पर्याप्त अवधारणात्मक संरचनाएं न हों और जब हम उन्हें पुनर्निर्मित करने में अथवा नयी संरचनाएं बनाने में असमर्थ होते हैं, तब हम सीख नहीं पाते । अक्सर अपर्याप्त अवधारणात्मक संरचनाएं निर्मित हो जाती हैं, जिन्हें सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता। अत: वे नई चीजों को सीखने में बाधा उत्पन्न करती हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी बच्चे ने इकाई, दहाई अथवा स्थानीय मान के संकेतों से कोई संबंध बनाये बगैर अथवा इन्हें समझे बिना ही एक से सौ तक की गिनती मौखिक तौर पर और लिखित स्वरूप में भी याद कर रखी हो तो उसके द्वारा निर्मित अवधारणात्मक संरचना अपूर्ण है । यह लगभग निश्चित है कि इस बालक को हासिल वाली जोड़ सीखने में कठिनाई होगी। और यदि वह काफी अभ्यासादि से हासिल वाला जमा सीख भी ले तो भी वह हासिल की अवधारणा को इस प्रकार सामान्यीकृत नहीं कर पायेगा कि घटा के सवालों में ''उधार लेने की अवधारणा'' समाहित कर सके । दूसरी ओर, वह बालक जिसने गिनती करना स्थानीयमान आदि की पर्याप्त समझ के साथ सीखा है वह हासिल की संकल्पना आसानी से बना लेगा तथा हासिल की ही अवधारणात्मक संरचना को इस प्रकार पुनर्निर्मित करने में समर्थ होगा कि वह ''उधार लेने'' के विचार को भी समाहित कर सके। इस तरह सीखने में हमारी अवधारणात्मक संरचनाओं में परिष्कार हुआ और वे और अधिक समर्थ बन गईं। यह सीखना पहले प्रकार के सीखने से कुछ भिन्न है।

बिना समझे ही नियमों को सीखने के कारण अपर्याप्त अवधारणात्मक संरचनाएं निर्मित होती हैं। ये संरचनाएं चूंकि आगे बढ़ाई नहीं जा सकती अत: सीखने में समस्या उत्पन्न करती हैं ।

पूरी अवधारणा तथा पर्याप्त अवधारणात्मक संरचना की एक विशेषता यह है कि इन्हें ईश्वर प्रदत्त तथा/या अनुल्लंघनीय नहीं समझा जाना चाहिए । जब संरचनाएं समझ के साथ निर्मित होती हैं तब सीखने वाला इन्हें ऐसे उपकरणों के रूप में देखता है जिन्हें उसने स्वयं गढ़ा है। इसी कारण जब किसी अवधारणात्मक संरचना को तोड़ने, छोड़ने, अथवा पुनर्निर्मित करने की आवश्यकता आ पड़ती है तब एक बेहतर संरचना के निर्माण के लिए वह विश्वासपूर्वक ऐसा कर पाता है । जबकि यदि वह संरचनाएं उसे पकड़ा भर दी गई होतीं हैं, तो सीखने वाला जरूरत पड़ने पर भी उन्हें नकारने अथवा बदलने में कठिनाई अनुभव करता है। यहां हम यह कह सकते हैं कि लकीर के फकीर और जड़ विचारों में पड़े रहने वालों से भी गणित की बहुत दोस्ती नहीं बन पाती।

पाठ्यक्रम तथा शिक्षण-विधि के लिए निहितार्थ

(अ. 7) बे-समझे नियमों को रटने की प्रकृति से हर हाल में बचा जाना चाहिए । शिक्षाक्रम में इसका कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

(अ. 8) गणितीय समझ की दीर्घकालिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षार्थियों की अवधारणात्मक संरचनाओं को बनाने में सहायता की जानी चाहिए । शिक्षाक्रम के लिए विषयवस्तु के चुनाव की यह एक कसौटी होनी ही चाहिए।

(अ. 9) सीखने का क्रम ऐसा बनाया जाना चाहिए कि अवधारणात्मक संरचनाएं धीरे-धीरे तथा अपने आप खुलती जायें।

(अ.10) आम तौर पर पाठ्यक्रम में ऐसी सामग्री सम्मिलित की जाती है जो गणित के उपयोगितावादी मूल्य से संबद्ध हो । जैसे दिन प्रतिदिन के लिए उपयोग में लाये जा सकने वाले कौशल एवं क्षमताएं । ऐसी सामग्रियां जिनका कोई उपयोगितावादी महत्त्व नही है जैसे कि अंक पद्धति में 'पैटर्न' खोजना, आदि को भी पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए । ये बच्चों को नयी अवधारणात्मक संरचनाएं विकसित करने का अवसर प्रदान तो करेंगी ही, साथ ही इससे बच्चे गणित में छिपे हुए सौंदर्य से साक्षात्कार करने का अवसर भी प्राप्त कर पायेंगे ।

गणितीय अवधारणाओं के बीच सारे संबंध तार्किक-संबंध होते हैं । ये अवधारणाओं में ही निहित होते हैं तथा इस व्यवस्था से बाहर किसी चीज पर आश्रित नहीं होते । अत: इन संबंधों में कोई आकस्मिक पहलू शामिल नहीं होता । इन संबंधों को उतनी

ही स्पष्टता तथा शुद्धता से परिभाषित किया जा सकता है जितनी स्पष्टता तथा शुद्धता से गणित की अवधारणाओं को परिभाषित किया जाता है । चूंकि अवधारणात्मक संरचनाएं केवल अवधारणाओं तथा इन संबंधों पर आश्रित होती है अत: शुद्धता तथा स्पष्टता का यह गुण उन पर भी लागू होता है । किन्तु अवधारणात्मक संरचनाएं अत्यधिक जटिल होती हैं । अवधारणाओं तथा संरचनाओं में बहुत ज्यादा उलट- पुलट करने की आवश्यकता होती है और सबसे अहम बात तो यह है कि ये सभी चीजें अत्यधिक अमूर्त होती हैं। पहली नजर में तो प्रतीत होता है कि स्थिति अत्यन्त निराशाजनक है ।

किन्तु गणितज्ञों ने संकेतों की व्यवस्थायें विकसित की हैं, जो बहुत-सी सूचनाओं को व्यवस्थित कर देती हैं, व्यवस्था की स्पष्टता तथा शुद्धता बनाए रखती हैं तथा अवधारणाओं को शुद्धता के साथ उलटने-पुलटने की सुविधा भी प्रदान करती हैं। अत: गणितीय विचारों को बहुत बारीकी से पकड़ा जा सकता है तथा गणितीय चिंतन बहुत शुद्धता और भरोसे के साथ किया जा सकता है। गणितज्ञ ऐसा, उलटने-पुलटने के नियमों सहित, सभी चीजों के लिए संकेत बनाकर करते हैं । गणित में संकेत प्रणालियों का उपयोग इस सफलता के साथ किया जाता है कि गणितीय-चिंतन यंत्रवत लगने लगे। ऐसा इस सीमा तक होता है कि कोई गणितज्ञ इन चिन्हों से जुड़ी अवधारणाओं के बिना भी काम चला सकता है तथा वह अपनी सभी गणनाएँ केवल चिन्हों की ही भाषा में कर सकता है । तथापि वह सभी नियमों का ठीक-ठीक पालन कर रहा होता है तथा किसी भी मुकाम पर वह इन चिन्हों की शृंखला में छिपे हुए आशय को समझ सकता है।

इस प्रकार एक ऐसी औपचारिक भाषा विकसित हो गई है जो गणितीय संरचनाओं को हैरत भरे नियमित पैटर्न में अभिव्यक्त कर पाती है। किन्तु गणित की यह उपलब्धि गणित की सही समझ के विरुद्ध भी हो सकती है। पूरी संरचना के नियमित पैटर्न हैं। सांकेतिक नियमों को याद रखना तथा उनके अनुप्रयोग आसान होते हैं । बच्चे याद करने में अच्छे होते हैं । जबकि दूसरी ओर अनुभवों को व्यवस्थित करना तथा अवधारणात्मक विश्लेषण करना कठिन कार्य है; जो कि बहुधा अरुचिकर होता है, एकाग्रता एवं अनुशासन की मांग करता है साथ ही कठिन परीक्षण करने तथा अवधारणाओं का निर्माण करने में समय लग सकता है। अत: एक शिक्षक जो गणित को उन अर्थहीन संकेतों के रूप में पढ़ाता है जिनसे यांत्रिक रूप से गणनाएं की जा सकती हैं, वह प्राप्तांकों की दृष्टि से कम समय व ऊर्जा व्यय करके भी 'अच्छे परिणाम' प्राप्त कर सकता है ।

आज के अधिकांश स्कूलों में गणित को ऐसे ही पढ़ाया जा रहा है । यह तरीका शुरू में अच्छी तरह काम करता है। बाद में रटी गई चीजों की मात्रा बढ़ जाती है, उसे उपयोग में लाने की दिक्कतें बढ़ती जाती हैं, बच्चे अर्थ की राह छोड़ देते हैं और उसके बाद वह सीखना बंद कर देते हैं तथा हताश हो जाते हैं। दूसरी ओर वे शिक्षार्थी हैं जो उपयुक्त अवधारणात्मक संरचनाओं के सहारे अर्थ की राह पकड़े रहते हैं तथा इन संगणनाओं का अभ्यास करते रहते हैं । ऐसे शिक्षार्थी मस्तिष्क को नीरसता से बचाए रखते हैं तथा नई अवधारणाओं को सीखते समय अपना ध्यान अच्छी तरह केन्द्रित कर पाते हैं । अत: वे तीव्रता से सीखते हैं।

शिक्षाक्रम तथा शिक्षण विधि के लिए निहितार्थ

(अ.11) शिक्षाक्रम को शिक्षार्थियों का ध्यान संकेतार्थों की ओर आकर्षित करने में भी समर्थ होना चाहिए । साथ ही इसका उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि वह अच्छी संकेत प्रणाली तथा खराब संकेत प्रणाली में अन्तर करने की क्षमता विकसित कर सके ।

(अ. 12) शिक्षकों को प्रयास करना चाहिए कि बच्चे संक्रियाएं स्व-चालित (ऑटोमेटिक) तरीके से करने लगें। उन्हें हर नियम लगाने से पहले ठहर कर सोचना न पड़े। पर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वे संक्रियाओं को यंत्र-वत (मेकेनीकली) न करें। स्व-चालित रूप से संक्रियायें करने में और यंत्रवत करने में फर्क यह है कि स्व-चालित रूप से करने वाला व्यक्ति कभी भी अर्थ से कटता नहीं। वह जो काम कर रहा है, उसका मतलब बता सकता है। जब कि यंत्रवत करने वाला चाहे सही कर सके, पर उस के अर्थ एवं कारणों की व्याख्या नहीं कर पाता।

3. वैधता के लिए जाँच-प्रक्रियाएं

किसी कथन की सत्यता की अन्तिम कसौटी समझ के उस स्वरूप पर निर्भर करती है जिससे वह कथन संबंध रखता है । भाषा तथा साहित्य में यह कसौटी किसी अधिक विद्वान व्यक्ति की राय हो सकती है जबकि विज्ञान में यह कसौटी तर्कों में उलझे हुए प्रयोगाधारित तथ्य हो सकते हैं, किन्तु गणित में यह कसौटी क्या है ? भाग्यवश गणित के संदर्भ में समझ के अन्य स्वरूपों की तुलना में इस प्रश्न का उत्तर देना अधिक सरल है । गणित में यह अन्तिम कसौटी सदैव गणित-शास्त्र की आंतरिक संगति है ।

गणितज्ञ किसी कथन की तारतम्यता दिखाने के लिए व्यवस्था विशेष के भीतर पहले से स्वीकृत परिणामों का उपयोग करते हैं तथा इसके लिए वे सत्यापनों तथा सिद्ध करने की प्रक्रियाओं का उपयोग भी करते हैं। सत्यापन का प्रयोग किसी ऐसे कथन की सत्यता की जांच के लिए सरलता से किया जा सकता है जिसका अर्थ कुछ विशिष्ट हो । उदाहरण के लिए ''$4x + 5 = 21$ समीकरण का

हल x = 4 है''। किन्तु सामान्य कथनों के लिए जैसे कि ''किसी त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोणों के बराबर होता है'', प्रमाण आवश्यक होता है । इस मामले में सत्यापन न तो संभव है न ही पर्याप्त ।

संभव इसलिए नहीं है क्योंकि कोई वास्तविक त्रिभुज गणितीय त्रिभुज नहीं है। कोई भी, कभी भी उतनी शुद्धता की मांग कर सकता है जितनी हमारे उपकरणों की सीमा से बाहर है । दूसरी ओर सत्यापन इसलिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि कोई भी सदैव कह सकता है, ''हाँ यह त्रिभुज नियम के अनुरूप है, किन्तु कोई अन्य त्रिभुज जिसे मैं बनाऊंगा सम्भव है नियम के अनुरूप न हो''।

अत: इस मामले में परिणाम को श्रम-साध्य तरीके से पहले से स्वीकृत प्रमेयों के जरिये तथा पहले से ही स्वीकृत निष्कर्ष निकालने के नियमों से सिद्ध करना होता है । अत: हम कह सकते हैं कि गणितज्ञ संदेहों का सफाया तर्क की समर्थ शक्ति से करते हैं। अत: गणितज्ञों ने सहमति का एक अत्यधिक उच्च स्तर प्राप्त कर लिया है तथा यह सहमति पूर्णत: तार्किक है। इसके बावजूद यह संभावना सदैव बनी रहती है कि कोई गणित का विद्यार्थी लेविस कैराल के संवाद ''व्हाट द टॉरटॉज सैड टू एचिल्स'' के पात्र कछुआ महोदय के समान हो जो यह तो स्वीकार करते हैं कि-

(क) वे सभी वस्तुएं जो किसी एक वस्तु के बराबर होती हैं; आपस में भी बराबर होती हैं। तथा

(ख) दिए गए त्रिभुज की दो भुजाएं एक ही वस्तु (फुटपट्टी) के बराबर हैं ।

किन्तु यह स्वीकार नहीं करते कि -

(य) ''इस त्रिभुज की ये दो भुजाएं आपस में बराबर हैं ।''

एचिल्स की ऐसे लोगों के लिए यह टिप्पणी सच ही है कि ''उन्हें चाहिए कि वे यूक्लिड(रेखा गणित) को छोड़ें तथा फुटबाल को अपना कर्मक्षेत्र बनाएँ ।''

यहां मेरा अभिप्राय यह है कि यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त तथ्य को नहीं देख पाता है तो उसे कितने भी प्रयोगाधारित तथ्य दें अथवा कितने ही विद्वानों की राय दें, कोई लाभ नहीं होगा । मानवीय ज्ञान के सौभाग्य से विशेष रूप से गणित के सौभाग्य से, तर्क को इस तरह 'देख' पाने में असमर्थ व्यक्ति अत्यंत्य दुलर्भ होते हैं। (मैंने अभी तक कोई नहीं देखा) ।

अत: हम निष्कर्षत: कह सकते हैं -

(क) गणित में किसी कथन की सत्यता को विद्वानों की राय अथवा प्रयोगाधारित तथ्यों के आधार पर स्थापित नहीं किया जा सकता ।

(ख) किसी गणितीय कथन को स्वीकृत प्रमेयों तथा निष्कर्ष निकालने के स्वीकृत नियमों के आधार पर ही प्रमाणित किया जा सकता है ।

(ग) वह जिसे अवधारणाओं, अवधारणात्मक संरचनाओं प्रमेयों तथा निष्कर्ष निकालने के नियमों का ज्ञान नहीं है, वह गणितीय कथनों की सत्यता को नहीं 'देख' सकता ।

शिक्षाक्रम तथा शिक्षण विधि के लिए निहितार्थ

(अ. 13) शिक्षाक्रम में संगति तथा प्रमाण की अवधारणाओं का समावेश होना चाहिए ।

(अ. 14) जितना जल्दी यह सार्थक रूप में संभव हो सके हमें पूर्व-मान्यताओं तथा निष्कर्ष निकालने के नियमों का खुलासा कर देना चाहिए ।

(अ. 15) यदि बच्चा किसी कथन के पीछे का तर्क नहीं देख पा रहा हो तो शिक्षक को उसे उस कथन को ठीक अथवा गलत के रूप में स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए ।

(अ. 16) कक्षा का वातावरण शिक्षक के हक में अधिनायकवादी नहीं होना चाहिए ।

निष्कर्ष -

इस लेख में मैंने गणित सीखने तथा सिखाने के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों पर जोर देने का प्रयास किया है। शिक्षाक्रम के निहितार्थ तार्किक आधारों ही पर दिए गए हैं । वस्तुत: शिक्षाक्रम के लिए विषय वस्तुओं को मात्र तार्किक आधारों से प्राप्त नहीं किया जा सकता बल्कि अन्य बहुत-सी चीजों का ध्यान रखना होता है । बावजूद इसके, मेरा मानना है कि तार्किक वरीयताओं को भी महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए तथा किसी को उनका उल्लंघन, बिना पर्याप्त कारणों के नहीं करना चाहिए । मैं यह भी मानता हूं कि गणित के सीखने और सिखाने को पृथक रूप से नहीं सुधारा जा सकता । यह संभव नहीं है कि गणित में तो तर्क व समझ को विकसित किया जाए तथा अन्य सभी विषय निर्देशात्मक तरीके से पढ़ाये जाऐं ।

प्रत्येक शिक्षाक्रम की कुछ अपनी ज्ञान-मीमांसात्मक पूर्वधारणाएँ होती हैं । सामान्यत: ये पूर्वधारणाएं विस्तार से और अलग से बताई नहीं जाती । इस कारण वे अविश्लेषित रह जाती हैं तथा हम यह भी निश्चित नहीं कर पाते हैं कि यह शिक्षाक्रम अपनी ज्ञान-मीमांसा के अनुरूप है भी अथवा नहीं । अत: शिक्षाक्रम के किसी एक हिस्से में विस्तारपूर्वक तथा अलग से यह बताया जाना चाहिए कि वे प्रमुख ज्ञान-मीमांसकीय सिद्धांत कौन-कौन से हैं, जिन पर यह शिक्षाक्रम आधारित है । ◆

अनुवाद : विजेन्द्र सिंह चौहान